फिल्म निर्माता मुजफ्फर अली की फिल्म उमराव जान के एक गीत को अक्सर लोगों को गुनगुनाते हुए सुना जाता है। दिल चीज क्या है आप मेरी जान लीजिए, दीवार-ओ-दर को गौर से पहचान लीजिए। इसके सुर, लय और ताल के साथ ही दिल में स्पंदन और मानस पटल पर कई तस्वीरें एक साथ उभरती हैं। फिल्म में उस दीवार और दर का संबंध कहां से है यह अलग बात है, लेकिन अयोध्या (तत्कालीन फैजाबाद) से इस दीवार और दर का गहरा नाता है। फिल्म के कई सीन फैजाबाद में पूरब का ताजमहल कहे जाने वाले बहू बेगम के मकबरे की बारादरी में शूट किए गए थे। उम्मत-उज़-ज़ोहरा 'बहू बेगम' अवध के नवाब शुजाउद्दौला की पत्नी थीं। यह मकबरा बहू बेगम ने ही बनवाया था। वर्तमान में यह ऐतिहासिक इमारत क्षरण के दौर से गुजर रही है। खंडहर में बदल रही है। अवैध कब्जे हो रहे हैं। कहने के लिए यह पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है, लेकिन स्थिति ठीक नहीं है। कभी यह तत्कालीन फैजाबाद की शान थी। *-राजेंद्र कुमार पांडेय*

बदहाल हो रहा 'पूरब का ताजमहल'

बहू बेगम मकबरा का निर्माण

पूरब के ताज महल कहे जाने वाले बहू बेगम मकबरा का निर्माण अवध के तीसरे नवाब शुजाउद्दौला (जन्म 19 जनवरी 1732, निधन 26 जनवरी 1775) ने ईस्ट इंडिया कंपनी से 22-23 अक्टूबर 1764 को लड़ाई हारने, फैजाबाद को अपनी राजधानी बनाने और अकाल के दौर में लोगों को काम देने के लिए अपनी पत्नी उम्मत-उज-जोहरा (जिन्हें बाद में बहू बेगम के नाम से जाना गया) के लिए शुरू कराया था। यह गैर-मुस्लिम वास्तु कला का उत्कृष्ठ नमूना है। जानकार कहते हैं कि इसमें ईरान से आए कारीगर और सामानों के साथ देशी मजदूरों और सामान का प्रयोग किया गया। हालांकि नवाब इसे पूरा नहीं करा पाए। जिम्मेदारी उनके बेटे आसफुद्दौला के पास आई, लेकिन लखनऊ को राजधानी बनाने के बाद उसने इसे इसके हाल पर छोड़ दिया, तो बहू बेगम ने निर्माण को आगे बढ़ाया। निर्माण के दौरान ही उनकी भी मौत हो गई, लेकिन उन्होंने इसके लिए धनराशि की व्यवस्था पहले से कर रखी थी। इसी से उनके खास सिपहसालार दाराब अली खान ने 42 मीटर ऊंचे मकबरे का निर्माण पूरा कराया, जहां से पूरे शहर को देखा जा सकता है। शहर के मौलाना जफर अब्बास कुम्मी बताते हैं कि बहू बेगम मकबरे के साथ की इमारतें नवाबी शान-ओ-शौकत का बेजोड़ नमूना है। इसके निर्माण में चार सौ मजदूर आठ साल तक लगातार लगे रहे। नवाबी काल में पूरब के ताजमहल के साथ व्यवस्थित शहर बसाने के लिए कई निर्माण कराए गए। इनमें गुलाबबाड़ी के साथ चौक की ऐतिहासिक घंटाघर सहित इकदरें और तीन दरें है। चौक में ही सैकड़ों साल पुरानी मस्जिद हसन रजा खां भी है।

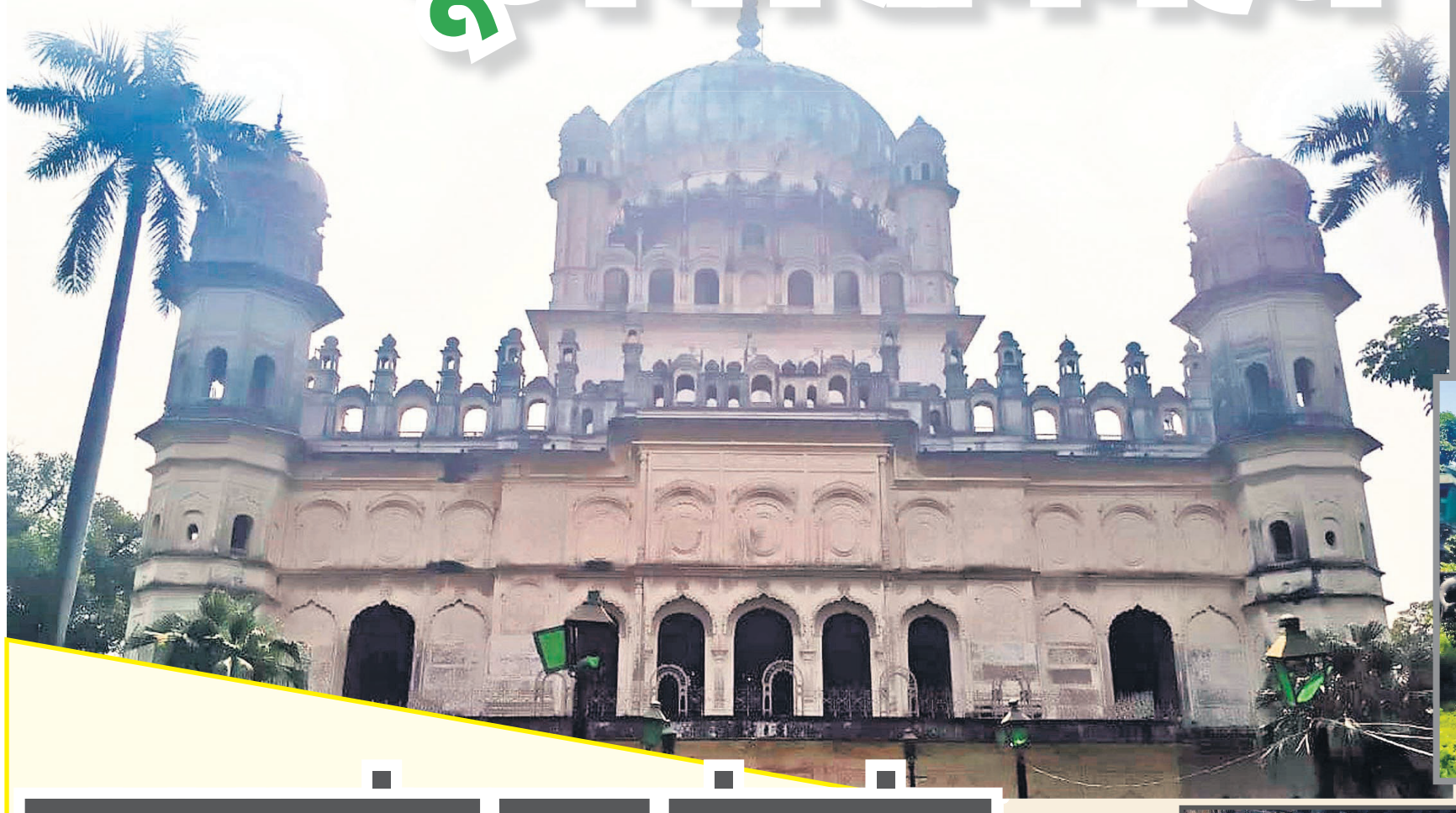

उत्तराखंड का रंगमंच
अपने ही रंगों की तलाश में

उत्तराखंड की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के साथ रंगकर्म की स्थिति उतनी ही चुनौतीपूर्ण है। थियेटर की दुनिया में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर पहचान बना चुके वरिष्ठ अभिनेता एवं रंगकर्मी श्रीश डोभाल कहते हैं कि प्रदेश में रंगकर्म आज भी प्रोत्साहन और विजन के अभाव में पिछड़ा हुआ है। पेश हैं उनसे किए गए चुनिंदा सवालों के जवाब-

थियेटर से निकलता है फिल्मों का रास्ता

थियेटर सिर्फ अभिनय नहीं, बल्कि समाज का दर्पण है। फिल्मों की ओर जाने का रास्ता थियेटर से होकर ही निकलता है। यहां अनुशासन, गहराई और मनुष्य की आत्मा तक पहुंचने की शक्ति मिलती है। अगर उत्तराखंड इसे अपना ले, तो यहां से भी अगली पीढ़ी के निर्मल पांडे जन्म ले सकते हैं। आज जब मंच के परदे उठते हैं और रोशनी चेहरे पर पड़ती है, तो यह केवल एक नाटक की शुरुआत नहीं होती, बल्कि एक सपने का जीवित होना होता है। हमारे जैसे कलाकार उस सपने को जीते हैं और याद दिलाते हैं कि उत्तराखंड का रंगमंच अभी अपने असली रंगों की तलाश में है।

हरीश उप्रेती करन
हल्द्वानी

थियेटर के विकास में सरकार को गंभीर होना होगा

राज्य सरकार को रंगकर्म को लेकर गंभीर होना चाहिए। रंगकर्मियों के लिए कम से कम एक पुरस्कार तो होना ही चाहिए, ताकि कलाकारों का मनोबल बढ़े। अच्छे ऑडिटोरियम हों और वे आसानी से उपलब्ध भी कराए जाएं, तभी मंच पर नई पीढ़ी आएगी। अगर सरकार और समाज थोड़ी और गंभीरता दिखाए तो उत्तराखंड का रंगमंच भी नई ऊंचाइयों को छू सकता है।

रंगऋषि श्रीष डोभाल का परिचय

15 भाषाओं में नाटकों का निर्देशन, कन्नड़ में आठ नाटकों का मंचन, 35 से अधिक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय निर्देशकों के साथ काम और छह नाटकों का अंतर्राष्ट्रीय समारोहों में सफल मंचन, श्रीश डोभाल का यह सफर, उन्हें सच्चा रंगऋषि बनाता है। राजस्थान के राज्यपाल द्वारा प्रदान किया गया गोल्डन अचीवर्स अवॉर्ड उनकी उपलब्धियों में चार चांद लगाता है।

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा (एनएसडी) से 1985 में स्नातक रहे श्रीश डोभाल ने प्रकाश झा की परिणति समेत नेशनल अवॉर्ड जीत चुकीं तीन फिल्मों के अलावा आसमां कैसे-कैसे और खिलती कलियां जैसे दो दर्जन से अधिक टीवी धारावाहिकों के अलावा कई टेलीफिल्मों में अभिनय किया है। हाल ही में उन्हें रंगमंच में उल्लेखनीय योगदान के लिए बलराज साहनी नेशनल अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। वह राजकुमार राव अभिनीत 'बधाई दो' फिल्म में भी नजर आ चुके हैं। उनकी गढ़वाली फिल्म 'रैबार' 19 सितंबर को देश के प्रमुख शहरों और अमेरिका में रिलीज हुई है।

रक्त अभिषेक नाटक में रंगकर्मी श्रीश डोभाल

फिल्म और थियेटर में जमीन-आसमान का अंतर

फिल्म में गलती सुधारने का मौका होता है, थियेटर में नहीं। यहां दर्शक सामने होते हैं, उनकी सांसें आपके संवाद के साथ चलती हैं। एक चूक और पूरा अभिनय बेअसर। यही इसे कठिन भी बनाता है और खूबसूरत भी।

थियेटर से जीवन की आर्थिकी नहीं चलती

उत्तराखंड में कॉमर्शियल थियेटर का कोई ढांचा नहीं है। कलाकार अगर मंच से जुड़ा रहना चाहता है, तो उसे दूसरी आजीविका का सहारा लेना ही पड़ता है, जबकि महाराष्ट्र, गोवा या बंगाल में यही थियेटर जीवन जीने का साधन है।

चंबा की रामलीला में कभी बंदर तो कभी राक्षस बने

मेरे रंगमंच की शुरुआत चंबा की रामलीला से हुई, जहां कभी बंदर तो कभी रावण की सेना में राक्षस बन जाता था। उच्च शिक्षा के लिए देहरादून आया तो जागृति संस्था से जुड़ा और वहीं से रंगमंच की ओर झुकाव बढ़ा। 1981 में एनएसडी में चयनित होने के बाद खुद को पूरी तरह थियेटर को समर्पित कर दिया।

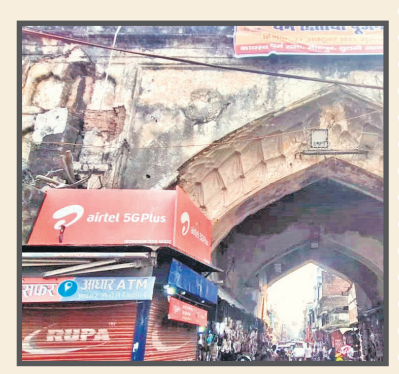

नवाब काल में चौक ही बाजार हुआ करती थी। शहर फैजाबाद के चौक इलाके की पहचान चारों ओर बने दरों (मेहराबदार दरवाजे) से भी होती है। इन्हीं दरों के बीच शहर का महत्वपूर्ण बाजार बसता था। इसे त्रिपोलिया कहा जाता था, जहां दुकानें होती थीं। अब इसे घंटाघर के नाम से जाना जाता है। यहां मौजूद दुकानों में अब भी कई सैकड़ों साल पुरानी हैं। इन दरों पर यूरोपियन शैली के बेलबूटे उकेरे गए हैं। यह दरें एक प्रकार से इंट्री गेट थे। बाजार को वास्तु और ज्योतिषीय गणना के हिसाब से अर्ध चंद्राकार बनाया गया है। दरों को बनाए जाने का मकसद रायल बाजार को सुरक्षा और भव्यता देना था। शाही परिवार से या फिर दूसरे लोग बाजार में दाखिले के लिए इसी गेट से अंदर जा सकते थे। उनकी जांच पड़ताल की जा सकती थी। दरों की नक्काशी भी अद्भुत थी। लखौरी ईंटों और चूना सुर्खी से बने इन दरों पर उकेरे गए बेलबूटे की नक्काशी आकर्षण का केंद्र थी। दरों के दोनों किनारों पर दो बड़ी मछलियों की तस्वीर उकेरी गई है। यह शाही चिह्न था। इनकी भी अलग एक कहानी है। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने इसी से राज चिह्न लिए जाने की बात कही जाती है। दरों की नक्काशी और मछलियों की अपनी सांस्कृतिक पहचान है। अब तो इनका क्षरण हो रहा है, लेकिन किसी समय में यह शहर की शोभा थे। पिछले कुछ दिनों से पूर्वी तीनदरें की मरम्मत के साथ सजाया, संवारा और संरक्षित किया जा रहा है। वहां लगाए गए मजदूर बताते हैं कि इसे उसी पद्धति से बनाया जा रहा जैसे यह पहले बना था। उम्मीद है कि इसका आकर्षण फिर वापस लौटेगा।

शहर के बीचों-बीच स्थित घंटाघर

शहर के बीचों-बीच स्थित घंटाघर शहर की एक पहचान है। कभी घंटाघर के समय की आवाज पर शहर सोता और जागता था। घंटाघर को बलरामपुर स्टेट के राजा ने जार्ज फिफ्थ के भारत आने पर खुशनूदी में लगवाया था। इसकी तकनीक अद्भुत थी। इसे लंदन से मंगवाकर स्थापित किया गया था। कभी यह घड़ी पानी की लहरों से चलती थी। इसकी आवाज पूरे शहर को सुनाई पड़ती थी। बाद में यह अपनी आभा खोता चला गया।

नगर पालिका फैजाबाद के पूर्व चेयरमैन विजय गुप्ता बताते हैं कि घड़ी के चलने के लिए घंटाघर के नीचे एक कुंआ है। यहां से घिर्री और महीन तार से ऊपर की सुई व घंटे को जोड़ा गया था। कुएं के पानी में एक बार लहर उत्पन्न करने के बाद यह लगातार चलती और समय बताती रहती थी, लेकिन बाद में खराब हो गई। उन्होंने दो बार इसकी मरम्मत कराई। बरेली के कारीगर से इसे ठीक कराया गया। पहली बार कुएं के पानी से चली, लेकिन घिर्री और तार न मिलने के कारण दोबारा, उन्होंने इस पर इलेक्ट्रॉनिक घड़ी लगवाई। साल भर चलने के बाद यह भी बंद हो गई। बीच में इसकी मरम्मत की जिम्मेदारी अयोध्या विकास प्राधिकरण ने भी ली थी, लेकिन बाद में वापस कर दिया। इस समय इसकी जिम्मेदारी नगर निगम के पास है, लेकिन शहर की शान घंटाघर की घड़ी बंद पड़ी है।

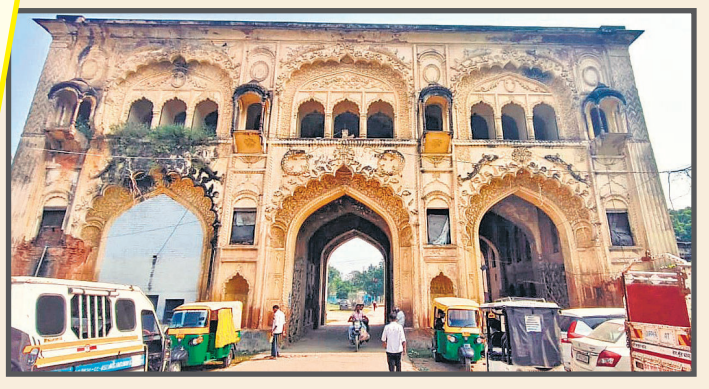

खोता जा रहा है आकर्षण

नवाबी काल की इमारतें अब अवैध कब्जों और रखरखाव के अभाव में बर्बाद हो रही हैं। इनका आकर्षण खोता जा रहा है। चाहे वह गुलाबबाड़ी की दरें हों या फिर बहू बेगम के मकबरे का दर। बहू बेगम मकबरे के दरें में कहीं दफ्तर तो कहीं स्कूल चल रहे हैं। चौक के दरे तो जगह-जगह रगड़ से टूट गए। अवैध कब्जे और गंदगी, अव्यवस्था से यह अपने हाल पर आंसू बहा रहे हैं। मरम्मत और रंगरोगन के अभाव में इनकी आभा जाती रही।